

गाँधी जी के ग्यारह व्रत

*पूजा चौधरी

गांधी की आंधी का है असर आज भी।
पर कभी तो जानो उनके कुछ राज भी!!
सहस्राब्दी पुरुष कोई यूँ ही तो नहीं बना
ग्यारह हिरोँ से जड़ा था अदृश्य ताज भी !!

जन्म लेना और अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगे रहना यह तो एक सामान्य गुण है, किन्तु इस कार्य के साथ ही ऐसे उदात्त मूल्य निर्माण करना जिससे अपने आसपास, अपने समाज, राज्य व देश के विकास में सहयोग मिल जाएँ, इनको सद् व स्थायी विकास की राह मिल जायें, ऐसा जीवन स्वतः महान बन जाता है।

हमारे देश भारत में भी महात्मा बुद्ध, महात्मा गोस्वामी तुलसीदास के बाद ऐसे एक महात्मा हुए जिन्होंने इस भारत वर्ष का नाम ऊँचा कर दिया। अपने कृत्यों से मानवता के नये व सहज मूल्य खड़े किये। लेकिन ये महात्मा सिद्धियाँ प्राप्त करने जंगल नहीं गये, गृह त्याग नहीं किया। वो महात्मा थे - मोहनदास करमचन्द गाँधी। जिन्होंने उन हृदयहीन, आक्रान्ताओं आतताइयों को शांति, सत्याग्रह व अहिंसा की शक्ति का महत्व समझा दिया। उस आत्मबलिदानी, रक्तपात के समय में ही इन्होंने शांति सेना खड़ी कर ली और आखिरकार विजय प्राप्त करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। ऐसे महापुरुष जिन्हें आज भी ना जाने कितने देश अपना आदर्श मानते हैं उन महात्मा गाँधी का जीवन जिन मूल्यों या कारणों से महान बना वे उनके द्वारा अनुशीलन किये गये ग्यारह व्रत थे। यही उनकी असली साधना थी। साधनों के रहते हुए भी उन्हें काम में न लेना, उन पर निर्भर न रहना या उनका त्याग करना ही सच्ची साधना है।

गांधी जी सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे। दीन-हीन भारत को ऊँचा उठाने के लिए उन्होंने अद्वितीय कार्य किये। वे पहले स्वयं आचरण करते थे फिर दूसरों को उपदेश देते थे। उनके एकादश व्रत उनके जीवन का सार है। और सबसे अनोखी बात कि उन्होंने अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए कोई ग्रंथ रचना नहीं की अपितु उन उदात्त मूल्यों को जीवन में शतशः उतार दिया। उन्होंने कहा भी था कि, "मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।"

एकादश व्रत :-

अब उन महान मूल्यों की चर्चा करते हैं जिन्होंने मोहनदास को महात्मा बना दिया, राष्ट्रपिता बना दिया, सबका बापू बना दिया। वे मूल्य जो आज हमें भी महान बना सकते हैं। गाँधी जी के समन्वय वादी दृष्टिकोण का परिणाम थे ये ग्यारह व्रत। उन्होंने सभी धर्म ग्रन्थों के सार - सार को ग्रहण किया और

गाँधी जी के ग्यारह व्रत

पूजा चौधरी

जीवन में उतारते गये।

महात्मा गाँधी ने आत्म-विकास और समाज-विकास को लक्ष्य करके श्रीमद्भगवद् गीता, बाइबिल, कुरान इत्यादि धार्मिक ग्रंथों से और पश्चिमी और पूर्वी विचारकों से अच्छे-अच्छे आदर्श ग्रहण करके निजी वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन में और दक्षिण अफ्रीका तथा भारत के अपने सामाजिक-राजनीतिक जीवन में उनको व्यावहारिक रूप देने के जो प्रयोग किये, उन्हीं के निकष को शायद गाँधीवाद कहा जाता है। इसके मुख्य सैद्धान्तिक आधार हैं सत्य और अहिंसा। अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह भी, जो कि अष्टांग योग के प्रथम चरण यम के अन्य तीन अंग हैं, गाँधीवाद के अन्य आधार हैं। अपने आश्रम के निवासियों के लिए उन्होंने जो एकादश व्रत निर्धारित किये, उनमें कुछ अन्य सिद्धान्त भी जोड़े-यथा-

अहिंसा, सत्यं, अस्तेयं
ब्रह्मचर्यं, असंग्रहं,
शरीर श्रमं, अस्वाद,
सर्वत्र भय वर्जनं,
सर्वधर्म समानत्वं,
स्वदेशी, स्पर्श भावना।

इन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप दिये गये तो कुछ मुद्दे उभरकर आये, जिनमें प्रमुख हैं - वर्ग-सहयोग, विकेन्द्रीकरण, द्रस्तीशिप, हृदय-परिवर्तन व सत्याग्रह। रचनात्मक कार्यक्रम इनके स्थूल रूप हैं, जिनके अंग हैं - सांप्रदायिक एकता, अस्पृश्यता-निवारण, मद्यनिषेध, खादी-प्रचार, ग्रामोद्योग, सफाई की शिक्षा, बुनियादी तालीम, हिन्दी-प्रचार, अन्य भारतीय भाषाओं का विकास, स्त्रियों की उन्नति, स्वास्थ्य-शिक्षा, प्रौढ-शिक्षा, आर्थिक समानता, कृषक-संगठन, श्रमिक-संगठन, विद्यार्थी-संगठन और स्वतंत्रता के लिए तथा स्वराज के लिए निरंतर संघर्ष। अन्याय और शोषण के विरुद्ध निर्भीकता से संघर्ष करते हुए आत्मबलि देना ही शायद गाँधीवाद की मुख्य पहचान है, जिसे सूली का मार्ग भी कहा जाता है

वे ग्यारह व्रत निम्नलिखित हैं:-

सत्य - सत्य ही परमेश्वर है। सत्य-आग्रह, सत्य-विचार, सत्यवाणी और सत्य-कर्म ये सब उसके अंग हैं। जहाँ सत्य है, वहाँ शुद्ध ज्ञान है। जहाँ शुद्ध ज्ञान है, वहीं आनंद हो सकता है।

अहिंसा - सत्य के साक्षात्कार का एक ही मार्ग, एक ही साधन अहिंसा है। बगैर अहिंसा के सत्य की खोज असंभव है।

हमें अभी तक गाँधी जी का यीशू द्वारा दिया गया अहिंसा से सम्बन्धित एक कथन ही याद है कि "अगर कोई एक गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल भी सामने कर दो।"

यीशु का मतलब था कि अगर कोई व्यक्ति किसी को थप्पड़ मारकर या चुभनेवाली बात कहकर झगडा करने के लिए उकसाता है, तो सामनेवाले को उससे बदला नहीं लेना चाहिए। अगर वह बदला लेगा तो बुराई का बदला बुराई से देने का क्रूर सिलसिला चलता रहेगा।—रोमियों 12:17.

गाँधी जी के ग्यारह व्रत

पूजा चौधरी

अहिंसा के बारे में कभी कभी लोग कह देते हैं कि क्या गाँधी जी की अहिंसा कायरता या युद्ध से डर नहीं था? या कह देते हैं कि गाँधी जी के मूल्यों को व्यावहारिक क्षेत्र में लागू करना संभव नहीं है। लेकिन मैं इस सम्बन्ध में कुछ प्रमाण देना चाहूंगा। एक बार गाँधी जी ने कश्मीर विवाद पर कहा कि "जब हमें कायरता या स्वाभिमान में से एक चीज चुननी हो तो शत्रु उठा लेने चाहिए।"

एक और – एक बार कुछ लड़कियों ने कहा कि बापू आते जाते कभी कुछ लड़के हम पर फव्वियां कसते हैं तब उन्होंने कहा कि "क्या आप चप्पल नहीं पहनती हो ?"

और एक, जब गाँधी जी ने "करो या मरो" का नारा दिया, तो कोई बताएँ कि यहाँ 'करो' का क्या अर्थ है। इसलिए कह सकते हैं कि गाँधी जी के सभी मूल्य शत प्रतिशत व्यावहारिक थे, उदात्त थे।

ब्रह्मचर्य – इसका अर्थ है- ब्रह्म की, सत्य की खोज में चर्चा, अर्थात् उससे संबंध रखने वाला आचार। इसका मूल अर्थ है- सभी इंद्रियों का संयम।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है किसी को भी मन्सा वाचा कर्मणा किसी को दुःख न देना। संकल्प में भी किसी के प्रति अपवित्र विचार न रखना। और गाँधी जी ने ये सब प्रवृत्ति मार्ग में कर दिखाया। जंगल में जाना या छोड़ना तो बहुत आसान है, यहीं रह कर किसी से लगाव न रखना सच्ची भक्ति है।

अस्वाद – मनुष्य जब तक जीभ के रसों को न जीते, तब तक ब्रह्मचर्य का पालन बहुत कठिन है। भोजन केवल शरीर पोषण के लिए हो, स्वाद या भोग के लिए नहीं। यह व्रत बहुत भारी, यूँ तो पंच विकारों के सामने यह स्वाद का विकार छोटा सा अंश है किन्तु अंश से वंश निकल आता है। समाज में रहते हुए खुद को अस्वाद बनाये रखना बहुत मुश्किल है साहिब, पर ये सब गाँधी जी ने कर दिखाया।

अस्तेय (चोरी न करना) – दूसरे की चीज को उसकी इजाजत के बिना लेना तो चोरी है ही, लेकिन मनुष्य अपनी कम से कम जरूरत के अलावा जो कुछ लेता या संग्रह करता है, वह भी चोरी ही है।

अपरिग्रह – सच्चे सुधार की निशानी अधिक ग्रहण करना नहीं, बल्कि विचार और इच्छापूर्वक कम ग्रहण करना है। ज्यों-ज्यों परिग्रह कम होता जाता है- सच्चा सुख, संतोष और सेवाशक्ति-बढ़ती है। अभय – जो सत्यपरायण रहना चाहे, वह न तो जात-बिरादरी से डरे, न सरकार से डरे, न चोर से डरे, न बीमारी या मौत से डरे, न किसी के बुरा मानने से डरे।

जबकि आज का व्यक्ति का मन रूपी थैला तो कभी भरता ही नहीं है। वह रोज कुछ न कुछ इसमें नया डालता रहता है, फिर भले ही वो कपड़े या और भी ऐसे सारे साजो सामान। आज लगभग हर घर भंगार से भरपूर होगा, किन्तु गाँधी जी त्यागी व संतोषी बने रहे।

अस्पृश्यता निवारण – छुआछूत हिन्दू धर्म का अंग नहीं है बल्कि यह उसमें छुपी हुई सड़न है, वहम है, पाप है। इसका निवारण करना ही प्रत्येक हिन्दू का धर्म है, कर्तव्य है।

और इस पाप को गाँधी जी ने सबसे बड़ा पाप कहा है। कि कोई व्यक्ति महज इसलिए तिरस्कृत होता है कि उसने समाज के गंदगी वाले काम चुने, तो यह उसका अपराध नहीं है बल्कि उसका अहसान है समाज पर कि उसने उसे साफ व स्वच्छ बनाने में सहयोग दिया। एक बार कहीं गाँधी ने कहा था कि "जिन नीची

गाँधी जी के ग्यारह व्रत

पूजा चौधरी

जाति वालों से तुमलोग इतनी घृणा करते हो एक बार बिना उनके अपनी बस्ती की कल्पना कीजिए। अहसान मानिए उन लोगों का कि उन्होंने गंदे काम अपने हिस्से में ले लिए। नहीं तो बस्तियों में कचरे व गन्दगी के ढेर के अलावा कुछ नहीं होता। फिर उस बात का क्या अर्थ रह जाता कि हम सब एक परमपिता परमेश्वर की संतान हैं।

सर्वधर्म-समभाव – जितनी इज्जत हम अपने धर्म की करते हैं, उतनी ही इज्जत हमें दूसरे के धर्म की भी करनी चाहिए। जहां यह वृत्ति है, वहां एक-दूसरे के धर्म का विरोध हो ही नहीं सकता, न परधर्मी को अपने धर्म में लाने की कोशिश ही हो सकती है। हमेशा प्रार्थना यही की जानी चाहिए कि सब धर्मों में पाये जाने वाले दोष दूर हों।

स्वदेशी – अपने आसपास रहने वालों की सेवा में ओत-प्रोत हो जाना स्वदेशी धर्म है। जो निकट वालों को छोड़कर दूर वालों की सेवा करने को दौड़ता है, वह स्वदेशी धर्म को भंग करता है।

असंग्रह के पश्चात् शरीरश्रम का नम्बर आता है। धीरे-धीरे सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर आ रहे हैं। शरीर श्रम को मध्यायु में तुच्छता की दृष्टि से समृद्ध लोगों ने देखना प्रारम्भ कर दिया था। जिसका परिणाम भी सामने आया। राष्ट्र के गुलाम हो जाने के साथ-साथ साँस्कृतिक सत्परंपराएं आदि ही नहीं यहाँ का सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो गया था और देश पर बिना किसी परिश्रम के नीतिज्ञ श्रमनिष्ठों का अधिकार हो गया था।

जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द जी ने देशभक्ति को सर्वोपरि भक्ति बताया था उसी प्रकार स्वदेशी विचार भी सबसे बड़ा मूल्य साबित हो सकता है या वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसे सबसे बड़ा मूल्य मानना चाहिए। कम से कम चीन जैसे नम्बर वन दुश्मन को कमजोर करने के लिए यही बहुत श्रेष्ठ अस्त्र साबित हो सकता है। हमें पता होना चाहिए कि आज यह दुश्मन हमारा ही घरेलू बाजार चौपट कर हमें खोखला कर रहा है। दीपावली पर हजारों जगमागाती चमकीली लाइट्स की लड़ियाँ, राखी और अभी होली पर रंग व पिचकारी न जाने कितने सामान हम जानबूझकर या अनजाने में खरीदते हैं और विदेशी ताकतों को संबल करने के साथ ही अपने देश को कमजोर कर रहे हैं, जबकि गाँधी जी ने उस समय देशव्यापी विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आंदोलन चलाया।

सियाराम शरण गुप्त की ये पंक्तियाँ तो खादी प्रचार का ही काम करती हैं -

'खादी के धागे - धागे में
अपनेपन का अभिमान भरा।'
यह पंक्ति भी उन्हीं की है -
'काम गाँधी ने किया जो
काम आँधी कर न सकती।'

शरीर श्रम :- को अपने एकादश व्रतों में स्थान देकर गाँधीजी ने श्रम की आवश्यकता का ही नहीं, इसकी महानता का भी समर्थन किया। व्रत रूप में स्वीकार कर लेने से यह सिद्ध हो गया कि शरीर श्रम अहिंसा, सत्य आदि ईश्वरीय बातों की तुलना में किसी बात में छोटा नहीं है। हम बहुत कुछ शरीर श्रम इसलिये नहीं करते हैं कि हम इसे गिरी हुई नजर से देखने के आदी हो गये हैं। लेकिन गाँधीजी के रास्ते से जिन्दगी का काफिला ले जाने वाले शरीरश्रम को अपना परम धर्म मानते हैं। प्राचीन काल में शरीरश्रम पर ही वर्ण

गाँधी जी के ग्यारह व्रत

पूजा चौधरी

व्यवस्था खड़ी की गई थी। हमारे देश के प्राचीन ऋषि लोग भगवान से यह प्रार्थना किया करते थे कि हे भगवन् हम कर्म करते हुए एक सौ वर्ष तक जीवित रहें। अर्थात् कर्महीन बनकर इस पृथ्वी का बोझ न बनें। गान्धी-शरीरश्रम व्रत के अनुसार जब तक मनुष्य के घट में श्वाँस है तब तक उन्हें श्रमनिष्ठ रहना चाहिए और यह तभी सम्भव है जबकि जीवन के उषाकाल से ही हम श्रम के अभ्यासी बन जायें। जवानी से ही श्रम व्रत का पालन करने वाला जीवन की शाम आ जाने पर भी काम में लगा रहता है। और व्रत की कुछ भी परवाह न करने वाला प्राणी गीदड़ की तरह मोटा होने पर भी गद्दे पर पड़ा रहता है। अतः श्रम अभ्यास डालने के लिये भारतीय नौजवानों को क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं करना चाहिए। इन्हें राष्ट्र को समृद्धिशील बनाना है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार भी शरीरश्रम मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। समृद्ध हो जाना अच्छी बात है किन्तु समृद्धि मनुष्य के अंगों की शक्ति नहीं छीन ले आज अगर समृद्ध भारतीय नागरिकों के मन से तपस्विता और कर्मनिष्ठता की भावना जाग उठे तो राष्ट्र की काया पलट जाय। एक बेजोड़ क्रान्ति हो जावे। क्योंकि समृद्ध जनों के कर्म मार्ग से गतिरोध आने की सम्भावना बहुत कम होती है।

शरीरश्रम का केवल लौकिक महत्व नहीं है इसमें दार्शनिक सत्य भी भरा हुआ है। जो लोक और परलोक सर्वत्र पूजित है। शरीर श्रम से अन्तःकरण की शुद्धता सम्बन्धित होती है।

शरीरश्रम करने के बाद प्राणी अपने आश्रम को लौटता है। थकान और प्यास के मिटने पर भोजन की इच्छा तेज होती है। ठीक इसी तरह एकादश व्रतों में भी एक क्रम है। इसके क्रम भंग से गूढार्थों की तारतम्यता नष्ट हो जाती है उसी तरह शरीरश्रम व्रत के पश्चात् अस्वाद व्रत की व्यवस्था दी गई है। अस्वाद व्रत गान्धीजी का अपना व्रत है। वह भी किसी अन्य व्रत से कम वजन नहीं रखता। प्रायः आज के दिन में हम शरीर धर्म के निर्वाह के लिये भोजन नहीं करते। स्वाद के आनंद के लिए भोजन करते हैं। विदेशों में भोजन को सड़ाकर तथा शुष्क रूप देकर खाने का प्रचलन हो चला है तो भारत में भोज्य सामग्रियों को तलकर नष्ट करके खाने की परम्परा का श्रीगणेश हो गया है। मनुष्यता और पशुता में इतना ही अन्तर है कि मनुष्य अपनी समझदारी से काम करता है और पशु में समझदारी नहीं होती। अतः एक व्यक्ति को मनुष्य होने के नाते यह समझ कर भोजन करने बैठना चाहिये कि हम मात्र स्वाद के लिये नहीं बल्कि जीवन के धर्म का पालन तथा शरीर परिपोषण के लिए भोजन करने जा रहे हैं। यही अस्वाद व्रत है। अस्वाद व्रत के पालन का यह अर्थ नहीं है कि आप ऐसी वस्तुओं को खाइये जिसमें कोई स्वाद न हो। वह तो निस्वाद है। और निस्वाद की गणना में मिट्टी आदि आते हैं। मिट्टी आदि खाने से कभी भी शरीर की चैतन्यता कायम नहीं रह सकती। अतः अस्वाद की व्याख्या करते समय महात्माजी ने बताया है कि भोजन को शरीर की आवश्यकता समझना चाहिये न कि उसे स्वाद के भुलावे में पड़कर मुँह में डाल लेना चाहिये।

अस्वाद व्रत के पालन में स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों को लेने की पूर्ण व्यवस्था है किन्तु औषधि रूप में जिस तरह रोगी को मात्रा रूप में औषधि दी जाती है उसी तरह इस शरीर को मात्रा और समय से ऐसे स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ दिये जा सकते हैं। जो सड़ाया हुआ, सुखाया हुआ, तला हुआ तथा तामसिक और उत्तेजक न हो। अस्वाद व्रत के स्वरूप को ठीक-ठीक समझ कर उसके पालन करने से मनुष्य कभी भी रोगों के चंगुल में नहीं पड़ सकता। स्वाद रचना की एक अनुभूति है। वास्तविक जीवन से इसका किंचित मात्र सम्बन्ध नहीं है। इसलिये वास्तविक जीवन की भोज्य वस्तुओं को समझ कर उन्हें मात्रा रूप में ग्रहण करना ही अस्वाद व्रत

गाँधी जी के ग्यारह व्रत

पूजा चौधरी

का पालन करना है। स्वादिष्ट भोजन उसी हालत में लेना चाहिये जब कि उससे शरीर के पोषण की आशा हो। अस्वाद व्रत के पालन से प्राणी में ब्रह्मचर्य आदि व्रतों के पालन की शक्ति आ जाती है।

अस्वाद के बाद गान्धीजी का अभय नाम का आठवाँ व्रत आता है। 'अभय' मानव हृदय की एक ऐसी अवस्था है जिससे जीवन की सक्रियता कभी बाधित नहीं होती। अभय एक ऐसी वस्तु है जिसके पास रहने से मनुष्य घोर संकटों में भी कभी निराश नहीं होता। निर्भयता एक ऐसा अस्त्र है जिसको साथ रखने पर हर मानव प्राणी कभी भी असत्य, अन्याय, असुरता आदि की शक्ति से पराजित हो अपने जीवन का मार्ग नहीं बदल देता। यही नहीं किसी भी प्रकार के रंगीन व्यक्तित्व से भी बड़े प्रभावित नहीं होता। निर्भयता वस्तुतः प्रत्येक मानव प्राणी के हृदय की आत्म चेतना है। आत्म विद्युत है।

गान्धीजी के अनुसार शारीरिक शक्ति और शौर्य वीरता नहीं है। दुनिया के भयों से मुक्त हो जाना ही वीरता है। मौत का भय, धन दौलत के लुट जाने का भय, कुटुम्ब परिवार विषयक भय, रोग भय, शत्रु, सरकार और समाज भय आदि जितने प्रकार के भय हैं, इन भयों की आँधी में हिमालय की तरह खड़ा ही निर्भयता है। और अभय व्रत का पालन है। मौत के भय का दमन हम अपनी आत्म भावना की शक्ति से कर सकते हैं। अहिंसा, अस्तेय और असंग्रह के व्रतों का पालन करते हुये हम चोर डाकुओं से अपने धन दौलत के लुट जाने के भय से मुक्त हो सकते हैं। वे आदमी कितने आश्चर्य के विषय हैं जो भूखे और नंगे मरते हुये मानव प्राणियों के बीच में निवास करते हुये भी अपनी तिजोरियों में लाख पर लाख रखते जाते हैं। सच पूछिये तो ऐसे मनुष्य कायर हैं, उन्हें अपनी अकर्मण्यता का भय है। अभय व्रत का पालन करने वाला गान्धीवादी अपनी कर्मशीलता पर दृढ़ रहता है। अभय व्रत के पालन में मनुष्य को निन्दा स्तुति आदि से भी सत्य और अहिंसा के रास्ते से विचलित नहीं होना चाहिये। कल्पित मान और प्रतिष्ठा की रक्षा में मन न लगाने वाला व्यक्ति ही सच्चा अभयव्रती है। ऐसे भी भय आते हैं जिसमें कुटुम्ब भी खतरे के दायरे में आया हुआ नजर आता है। मनुष्य की जीविका तक के चले जाने के चिन्ह दीखने लगते हैं। लेकिन मिथ्या जगत की समृद्धि की आशा अथवा विनाश के भय में पड़कर सत्य और अहिंसा पर चलने वाला कभी कभी भी दिग्भ्रान्त नहीं होता, वह गान्धी मार्ग पर निरन्तर चलता रहता है। उसके मस्तिष्क में देह भावना के स्थान पर देही की भावना होती है। परिवार के उपरान्त कभी-कभी मनुष्य रोगों के संक्रमित हो जाने के भय से रोगी की सेवा के लिये कटिबद्ध नहीं हो पाता। किंतु सत्य का सच्चा पथिक अभय होकर सेवा का सेनानी बनने के लिये तैयार हो जाता है। अभय हो जाना एक महान मनस्थिति भी है।

यों तो भय मात्र से झूटना बहुत ही कठिन है। अभयव्रत का पूर्ण पालन तो आत्मज्ञ प्राणी ही कर सकता है। किंतु व्यक्ति मात्र अभय व्रत का पालन करते हुये आत्मज्ञता की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं। देश की अपनी साँस्कृतिक प्रतिभा जो यहाँ की मिट्टी और जलवायु की उपज है उस पर पाश्चात्य संस्कृति द्वारा होते हुये हिमपात को वीरता और धीरतापूर्वक रोकने का प्रयत्न करते रहना भी सूक्ष्म दृष्टि में अभयव्रत के अंतर्गत ज्ञात होता है। यहाँ पर एक बात स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है - भौतिकवादी मानव प्राणी से कदापि अभयव्रत का पालन नहीं हो सकता भले ही उनके हाथों में बड़ी से बड़ी शक्ति क्यों न आ गई हो। अभयव्रत का पालन केवल आध्यात्मिक अतिरिक्त प्राणियों से ही सम्भव है। क्योंकि देह भावना के स्थान पर देही के अमरत्व में उनकी अविचल निष्ठा होती है। गान्धी जी के शब्दों में अभय मोह रहित स्थिति की

गौंधी जी के ग्यारह व्रत

पूजा चौधरी

पराकाष्ठा है।

एकादश व्रत में अस्वाद और सर्वत्र भय वर्जन आध्यात्मपरक अधिक होने के नाते अपना उत्तरदायित्व सर्वधर्म समानत्व व्रत को दे डालता वह गान्धी जी का नवाँ व्रत है। जहाँ सारी इकाइयाँ पूर्ण होकर बाद में अद्वैत रूप धारण कर लेती हैं। मर्य धर्म समानत्व का सरल रूपक वेदान्त की अद्वैत मान्यता है। अद्वैत में सारे दार्शनिक सिद्धान्त एक ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। एक ब्रह्म की सत्ता को ही सत् रूप में स्वीकृत किया जाता है। इस व्रत में भी यही होता है। विनोबा के जीवनम् सत्य शोधनम् के अनुसार विश्व के सारे धर्मों में मानवता रक्षण, अहिंसा के पालन एवं प्रेम प्रचार की ही बात कही गई है। अतः धर्मों के प्रवर्तक संत एवं ज्ञानियों की भिन्नताओं के बावजूद भी उनकी धुनियों में मानव वर्ग एक ही स्वरूप के अन्तरबिम्ब का दर्शन करता है। यह अन्तरबिम्ब देश जाति और रंग की भिन्नता की भावना की लहरों में भी आँदोलित नहीं हो पाया। इसे शुद्ध अन्तःकरण वाला निरपेक्ष व्यक्ति देख सकता है। सभी धर्मों के सिद्धान्तों एवं संतों को यौगिक अतेन्द्रिक अनुभूतियों में भी सभ्यता की झलक दीख पड़ती है। इस सभ्यता के सिद्धान्त रूपी प्रदीप की रोशनी में अपनी जीवन की रचना करना ही सर्वधर्म समानत्व व्रत का पालन करना है। सारे धर्मों में यह कहा गया है कि ईश्वर है। उसकी संख्या एक है। वह सत्य है। वह प्रेम से प्राप्त होता है। मनुष्य के सद्भवहार से प्रसन्न होता है। विश्व के नैतिक आचारों को जीवन में उतार लेने से उसके विश्वगत सापेक्ष सत्त्यों का आभास होता है आदि। इन संत मात्र के अनुभूति सूत्रों में विश्वास रखकर अन्य धर्म वालों की कट्टरता का प्रेम व्यवहार से परिष्कार करते हुये मानव मात्र में ईश्वर की झाँकी करता हुआ उनके साथ आत्मीयता का प्रयोग करते रहना गान्धी के सर्वधर्म समानत्व व्रत का लक्ष्य है। हम कुछ हैं। इस भावना के निर्बल हो जाने पर सर्वधर्म समानत्व के व्रत का पालन सरल हो जाता है और आदमी धीर-धीरे देवता होने लगता है। गान्धीजी के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हुआ था। वे केवल भारत में गुलामी की जंजीरों को ही तोड़ने के लिये नहीं थे अपितु एक नव कर्म स्फूर्ति आस्तिक समाज की रचना हेतु अवतरित हुये थे। यही कारण था कि अपने व्रतों के साथ उन्होंने स्वदेशी व्रत का आह्वान किया। स्वदेशी व्रत को उन्होंने महाव्रत के नाम से पुकारा था। गान्धीजी के अनुसार स्वदेशी व्रत राष्ट्र का एक महान विस्तृत धर्म है। गान्धी जी ने स्वदेशी शब्द का सम्बन्ध स्वधर्म से जोड़ दिया था जिसके लिये भगवान श्री कृष्ण ने पहले ही कहा है कि “स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः” गान्धी जी अपने स्वधर्म स्वरूपी स्वदेशी व्रत का न पालन करना भयावह ही नहीं आत्महत्या से भी अति निकृष्ट समझते थे। उनकी सारी राष्ट्र निर्माण की महत्वाकांक्षाएँ इसी एक व्रत में समाहित थी। उन्होंने स्वदेशी रूपी ग्राम्य-राज्य के रूप में समर्थ गुरु रामदास के रामराज्य का सपना देखा था स्वदेशी व्रत का तात्पर्य अपने देश के वस्त्र विचार और दर्शन के मूलभूत तत्वों एवं तन्तुओं से है। इसमें “जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी” की महनीयता भी कूट-कूट कर भी हुई है। इसमें राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं के सार्वभौम एवं सर्वकालिक उत्तर भी मौजूद हैं।

स्वदेशी की अवधारणा का सरल अर्थ है अपने नजदीक बनी वस्तुओं का उपयोग। विस्तृत अर्थों में अपने देश की भाषा, भूषा, भोजन, भेषज और भाव ही मूलरूप में स्वदेशी विचारधारा है। मुझे उन लोगों पर आश्चर्य होता है जो बिना परखे स्वदेशी वस्तुओं को कमतर समझते हैं और फिर इसके पीछे विदेशों के सुदृढीकरण को क्यों नहीं समझते? आज हम अगर विदेशी वस्तुएँ खरीदेंगे तो दोहरा नुकसान है। एक तो विगान्धी जी का अंतिम व्रत स्पर्श भावना का था। स्पर्श के आधार पर व्यक्ति का किसी भी व्यक्ति को ऊँचा अथवा नीचा मानना घोर अज्ञानता है। अगर हमें कोई नीचा समझ कर स्पर्श करने से परहेज रखता तो उसके इस छोटी

गौंधी जी के ग्यारह व्रत

पूजा चौधरी

सी अकल में कभी भी ईश्वर के अविनाशी अंश में अपवित्रता नहीं आ सकती और ना ही वह नीच ही हो सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अस्पृश्यता की मनोवृत्ति को समाप्त कर देना चाहिये। इस भावना के रहते हुये कभी भी हम अपने समाज का सर्वोदय नहीं कर सकते। अस्पृश्यता की भावना मनुष्य की सबसे नीच अंतःवृत्ति का धोवन करती हैं। इसे देखकर एक प्रबुद्ध प्राणी को महान आश्चर्य होता है कि मनुष्य के समान बुद्धि प्रधान कुछ जीवों के चरित्र में इतना बड़ा दोष कैसे आ गया? अस्पृश्यता निवारण एक समाज सुधार एवं सर्वोदय समाज की नींव है। इससे विश्व बन्धुत्व की भावना को भी बल मिलता है और परस्पर प्रेम का प्रसार भी होता है जो व्यक्ति और समाज का एक मात्र उद्देश्य है।

गाँधी जी के एकादश व्रत वे दिव्य विमान है जिन पर आरुढ़ होकर मानवता भूतल पर बसे हुये आनन्द निर्मित स्वर्ग की ओर प्रस्थान करती है ।

*सहायक आचार्य
ना.दे.वर्मा महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
भीलवाड़ा (राज.)

सन्दर्भ: -

1. संपादक: आनंद श्री कृष्णन
आस्क पब्लिकेशन
2. anandkrishnan.blogspot.com
3. हिन्दी साहित्य में गाँधीवाद - के. जी. बालकृष्ण पिल्लै
Gandhi aur Gandhi Marg
hindi.mkgandhi.org
4. गाँधी जी के एकादश व्रत
hindimilap.in
5. रोमियों के नाम चिट्ठी -
पवित्र शास्त्र का नयी दुनिया अनुवाद (अध्ययन बाइबिल, wol.jw.org)

गाँधी जी के ग्यारह व्रत

पूजा चौधरी